सन्त दादूदयाल जी महाराज

-श्री रामप्रवेश शास्त्री

सन्त दादूदयाल जी महाराज का जन्म संवत् 1601 वि. में अहमदाबाद में हुआ था। इनके जन्म के सम्बन्ध में ठीक वैसी ही कहावत प्रचलित है जैसी सन्त कबीर के जन्म के बारे में। कहा जाता है कि लोदी राम नामक ब्राह्मण को साबरमती में बहता हुआ एक बालक मिला। घर ले जाकर उन्होंने बच्चे का पालन-पोषण किया। वही बालक आगे चलकर दादू नाम से विख्यात हुआ। 12 वर्ष की अवस्था में दादूजी ने गृह त्याग कर सत्संग के लिए निकल पड़े। पिता-माता को चिन्ता हुई। अत: उन्होंने पकड़कर उनकी शादी कर दी। सामान्यत: किसी को भी वैराग्य-विमुख करने का एक ही तरीका अपनाया जाता है कि उसे विवाह -बन्धन में बाँध दिया जाय। लेकिन जिनका मन वैरागी हो जाता है, उनके लिए शादी करने अथवा न करने का कोई खास महत्त्व नहीं होता। फिर जहाँ तक संतों की बात है, प्राय: अधिकांश गृहस्थ जीवन के भुक्तभोगी मिलेंगे। इसलिए दादूजी की शादी तो हो गयी, लेकिन सांसरिक बंधन उन्हें बाँध न सके। 7 वर्ष बाद पुन: घर से निकल पड़े और सांभर पहुँच कर वहाँ धुनियाँ का काम करने लगे। इस आधार पर उनको धुनियाँ जाति भी कहा जाता है। वस्तुत: वे जाति-पाँति के बन्धन से पूर्णत : मुक्त थे। सम्प्रति 11 वर्ष की अवस्था में भगवान् कृष्ण ने इनको दर्शन दिया था।

12 वर्ष तक सहज योग की कठिन साधना करके इन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी। भक्ति रस का पान करते हुए छके रहते थे। दया की साकार मूर्ति थे। अपने दुश्मनों के प्रति भी सदैव दयालु रहे। जिन्होंने इन्हें कष्ट दिया, उनका भी उपकार माना। इसीलिए लोग इनको दयाल नाम से पुकारने लगे और दादू जी दादूदयाल बन गये। एक दिन का प्रसंग है कि दादू जी अपनी कोठरी में ध्यान लगाकर बैठे थे। **ईर्ष्या** और द्वेष के कारण कुछ ब्राह्मणों ने कोठरी के द्वार ईंटों से बन्द कर दिया। ध्यान से जागने पर जब बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिला, तो वे पुन: ध्यानमग्न हो गये। कई दिनों तक ध्यानस्थ

रहने के बाद वे तब बाहर निकल पाये जब लोगों को जानकारी हुई और उन्होंने बन्द द्वार खोला। द्वार बंद करने वालों के प्रति लोगों में इतना रोष पैदा हो गया कि उन्हें दण्ड देने पर उतारू हो गये। लेकिन दादूदयाल ने समझाकर कहा कि इनकी कृपा से ही मैं इतने दिनों तक भगवान् के चरणों में लौ लगाये रहा। अत: इन्हें दण्ड देने के बजाय इनका उपकार मानना चाहिए।
एक बार अकबर बादशाह से फतेहपुर सिकरी में दादूदयाल की मुलाकात हुई। अकबर ने पूछा कि खुदा की जाति, अंग, वजूद और रंग क्या है? दादूदयाल ने दो पंक्तियों में इस प्रकार उत्तर दिया कि-

"इसक अलाह की जाति है, इसक अलाह का अंग। इसक अलाह औजूद है, इसक अलाह का रंग।।

संसार में जो पैदा हुए है, वे सभी राही हैं। यहाँ रहना किसी को भी नहीं है। दुनिया सेमल का फूल है, जो बाहर से सुहावनी लगती है; परन्तु अन्दर कोई तत्त्व नहीं है। यहाँ कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसे अपना कह सकें। यहाँ तक कि स्त्री, बच्चे और यह शरीर भी अपना नहीं है। इसलिए हरि-स्मरण करके ही जीवन सार्थक किया जा सकता है। इसके लिए सिर का सौदा करना होगा। अहंकार छोड़कर प्रेम का मार्ग अपनाना होगा। साईं को सत्य से प्यार है। कसौटी पर चढ़ते ही सत्य और झूठ का पता लग जाता है। सत्य तपकर निखर उठता है और झूठ जलकर खाक में मिल जाता है। दादूदयाल कहते हैं कि-

"घीव दूध में रमि रह्या सबही ठौर। दादू बकता बहुत है, मथि काढैं ते और।।"

मन बड़ा मतवाला है। यही मैल पैदा करता है और यही धोता भी है। जबतक मनुष्य इस पर काबू नहीं पाता, तबतक मन्दिर, मस्जिद, घर, जंगल तथा नाना प्रकार का कष्ट उठाने का कोई लाभ नहीं। सतगुरू की सीख का अनुसरण करे, तो यह मतवाला मन सहज ही काबू में आ जाता है। दादूदयाल ने मानव, साधु और देवता का परिचय देते हुए कहा है कि-

"कहैं लखैं सो मानवी, सैन लखै सो साध। मन की लखै सु देवता, दादू अगम अगाध।।"

सतगुरु की कृपा जीव को ब्रह्म बना देती है। वैसे झूठे गुरुओं का भरमार है, जो भ्रम और अंधविश्वासों की जड़े मजबूत करते चलते हैं, जो स्वयं ही विषय-वासनाओं के दास है। केवल मुख से राम का नाम लेते रहते हैं। लेकिन दादूदयाल तो प्रतिक्षण राम के साथ रहने की बात करते हैं। चाहे गुफा में रहे अथवा पर्वत पर या घर में, सर्वत्र राम के साथ रहे और जब यह शरीर छुटे, तो ऐसी जगह छूटे, जहाँ

पशु-पक्षियों के भोजन के काम जा सके। इसलिए सद्गुरु की खोज होनी चाहिए। यदि सद्गुरु की खोज होनी चाहिए। यदि सद्गुरु मिल गया तो "एकै नाँव अलाह का पढ़ि हाफिज हूवा।"
हाफिज होने के लिए, विद्वान होने के लिए एक अल्लाह का नाम पढ़ना काफी है। लेकिन उसे पढ़ कौन सकता है? वही जिसे प्रेम की पाती वाँचने का विवेक नहीं है, उसका वेद-पुराण पढ़ना बेकार है। इस पाती का प्रभाव अद्भुत होता है। प्रेमी स्वयं प्रेमिका बन जाता है और उस प्रेमिका का प्रेमी कौन होता है? केवल अल्लाह। दादूदयाल जी के शब्दों में-

"आसिक मासूक ह्वै गया, इसक कहावै सोइ। दादू उस मासूक का, अल्लाह आसिक होई।।"

संसार में लिप्त रहकर कोई प्रेम रस का पान करना चाहतो हो, तो नादानी है। फूल की तो अपनी सुगन्ध होती है। उसमें दूसरी गंध कैसे समा सकती है? इसी तरह जहाँ राम का निवास है, वहाँ अहम् नहीं रह सकता। दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते। वह महल इतना बारीक है कि उसमें दो के लिए स्थान नहीं है। इसलिए अहम् को राम में समर्पित कर देना चाहिए। फिर तो दोनों एक हो जाते है। दोनों का मूल्य एक हो जाता है। दादूदयाल जी मिसरी और बाँस का उदाहरण देकर समझाते है कि-

"मिश्री माँ है मिलि करि, मोल बिकाना बाँस। यों दादू महिंमा भया, पार प्रहम मिलि हंस।।

पर ब्रहम से मिलकर हंस की कीमत कितनी बढ़ गयी है, इस बात का भी दादूदयाल से जानिये कि-

" केते पारिख पचि मुए, कीमति कहीं न जाई। दादू सब हैरान है, गुनें का गुण खाई।।
संसार में धर्म के नाम पर मानव को टुकड़ो में बाँटनेवाली बहुत-सी दीवारे खड़ी हैं। माया का स्वभाव यही है कि उत्तम नामों से दुनिया को मोहकर पनपती रहती है। लोगों को आपस में मिलाने की जगह लड़ाती रहती है। उसका स्वभाव है कि-

"माया मैली गुण भई, धरि धरि उज्जवल नाँव। दादू मोहे सबन को, सुर नर सबहीं ठाँव।।"

लेकिन अब तक का अनुभव क्या है? हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि न जाने कितने हो गये और होते चले जा रहे है। किन्तु प्रभाव माया का ही बढ़ा अभिमान और अहंकार के कारण सत्य प्रकट नहीं हुआ; क्योंकि-
"इस कलि केते ह्वै गये, हिन्दू मुसलमान। दादू साची बंदगी, झूठा सब अभिमान।।" इसीलिए दादूदयाल ने स्पष्ट घोषणा की है कि-

"दादू ना हम हिन्दू होहिगे, ना हम मुसलमान। "षट दर्शन में हम नहीं, हम राते रहिमान।।"

कैसी विडम्बना है कि कस्तुरी मृग की नाभि में होती है; लेकिन यह स्वयं इस रहस्य को नहीं जानता। फलत:बाहर घास सूँघता चलता है। ऐसे ही ब्रह्म हमारे अन्दर है; परन्तु अपने-पराये का भ्रम आँख के आगे आवरण डाल देता है, जिससे उसकी जानकारी नहीं हो पाती। और लोग मक्का, मदीना, काशी, द्वारिका दौड़ते है उसे ढूँढ़ने के लिए । दादूदयालजी बतलाते है कि-

" दादू केई दौड़े द्वारिका, केई कासी जाहिं। केई मथुरा की चलैं, साहिब घरहि माँहि।।"

करनी - कथनी एक हो, तब तो सिद्धि है, अन्यथा कहीं भी ठौर-ठिकाना नहीं मिलने का। मुँह से दीपक कहकर अन्धकार नहीं भगाया जा सकता। वस्तुत: दीपक जलाने पर अन्धकार दूर होता है। इसलिए दादूदयाल सावधान करते हैं यह कहकर कि-

" अंतर गति और कछू, मुख रसना कुछ और। दादू करनी और कछु, तिनकौ नाहीं ठौर।।

संतो ने जीते-जी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया है। इस जीवन में जिनकी मुक्ति नहीं हुई, उन्हें मरने के बाद अमर पद मिल जायगा-ऐसा भ्रम एक मूर्खता है। लेकिन इस सीधी सच्ची बात को लोग भूल जाते है कि ईश्वर का घट-घट में निवास रहता है।

दादूदयालजी के जीवन में दया और करूणा की अबाध धारा प्रवाहित होती रही। फिर जीव-बलि को यह कैसे बरदाश्त कर सकते थे। खुदा का मंदिर और मस्जिद बनवाकर उसकी पूजा करने वाले ईश्वर के बनाये जीव की हत्या करें- यह कितना बड़ा अज्ञान है। इसीलिए दादूजी ने मुग्ध अर्थात् मूर्ख की संज्ञा से सम्बोधित करते हुए कहा कि

"काला मुँह करि करद का, दिल तें दूरि विचार। सब सूरति सुबहान की, मुल्ला मुग्ध न मार।।"

सन्तों की एक आलीशान परम्परा का निर्वाह दादूजी ने भी बहुत सुन्दर ढंग से किया है। निदंक का आभार मानना जैसे सन्तों का अनिवार्य धर्म हो। निश्यत ही निदंक बड़े काम का होता है। 'सन्मार्ग' पर सहायक होता है। इसलिए दादूजी कह रहे हैं कि-

" दादू निदक बपुरा जिनि मरै, पर उपकारी साई। हमकूँ करता ऊजला, आपण मैला होई।।"

दादूदयाल जी की वाणी पढ़ते समय सन्त कबीर की याद आती है। निश्चय की निर्गुण धारा के संत कवियों में कबीर और दादूदयाल की जोड़ी बेजोड़ है। कबीर को उन्होंने गुरुवत् स्वीकार किया था। एक साखी में उनकी प्रशंसा करते हुए कहते है कि-

"सांचा सबद कबीर का मीठा लागैं मोहि। दादू सुनता परम सुख, केता आनन्द होहि।।"

दादूदयाल की वाणी बेजोड़ और मर्मभेदी है। इनके सैकड़ों शिष्य अपनी साधना और साहित्य के लिए लोक में पूजित हुए। इनकी करूणा, पे्रम और त्याग से प्रभावित होकर लोग इनकी ओर अपने-आप खिंच आते थे। आज भी दादू पंथ को माननेवाले बहुत बड़ी संख्या में हैं और बहुत बड़ा साहित्य का भण्डार है- इस पंथ का। संवत् 1660 ई. में दादूदयाल ने नराणे ग्राम में देह त्याग किया। वहीं पर इस पंथ की मुख्य गद्यी है, जिसे दादू द्वारा कहते है। दादू पंथ के लोग हाथ में सुमरनी रखते हैं और परस्पर ''सत्तनाम'' कहकर अभिवादन करते हैं। दादूदयाल ने प्रेम, दया और भक्ति की जो धारा प्रवाहित की है, उसमें अनंत काल तक लोग गोते लगाकर कृतार्थ होते रहेंगे।